International Research Journal of Humanities, Language and Literature
Volume 5, Issue 7, July 2018 Impact Factor 5.401
ISSN: (2394-1642)
© Associated Asia Research Foundation (AARF) Publication
Website-www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

समावेशी शिक्षा के विकास में साहित्य का योगदान :

डॉ0 ज्योति वर्मा
एसो0 प्रो0 / विभागाध्यक्ष (संस्कृत)
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय झाँसी

सारांश :–

शिक्षा के स्वरूप में वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण के पश्चात अत्यधिक परिवर्तन भारत की शिक्षा व्यवस्था में आया। आज शिक्षा का उद्देश्य रोजगार प्राप्त करने के साथ–साथ नैतिक मूल्यों का निर्माण करना भी है। मूल्य युक्त समावेशी शिक्षा ही वर्तमान में समाज का भला कर सकती है। समावेशी शिक्षा के अन्तर्गत सभी शिक्षार्थियों को बिना किसी भेद–भाव के सीखने के समान अवसर मिलें। समावेशी शिक्षा में समावेशीकरण से आशय यह कि विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक सामान्य छात्र एक अशक्त एवं विकलांग छात्र को समान शिक्षा प्राप्त हों। समावेशी शिक्षा के बौद्धिक एवं विकासात्मक दिव्यांगताओं से प्रभावित तथा निर्धन, मजलूम धार्मिक अल्पसंख्यकों के, व्यक्तियों को समाज की विभिन्न गतिविधियों में समाविष्ट कर उनका सर्वांगीण विकास करना है। संस्कृत साहित्य में वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत, बौद्ध साहित्य, में हमें समावेशी शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण सूत्र मिलते है। जिनको अपना कर हम वर्तमान शिक्षा प्रणाली को और समृद्ध बना सकते है।

प्रस्तावना :–

बच्चे राष्ट्र की आत्मा होते हैं। जिसकी आत्मा जीवंत, प्रखर, पुष्ट, सक्रिय होगी, उसका संपूर्ण व्यक्तित्व विकसित, उन्नत एवं गतिशील होगा। आत्मा मूर्च्छित हुई, तो स्वास्थ्य, धन, स्मरण शक्ति, मानसिक दक्षता सभी धीरे–धीरे नष्ट हो जाते हैं। जिस राष्ट्र में बच्चों के स्वास्थ्य, शिक्षा, संस्कार एवं उन्नत चरित्र का ध्यान रखा जाता है, वह राष्ट्र प्रगति के शिखर पर दिखाई देता है। और जहाँ बच्चे कुपोषण, कुशिक्षा, भेद–भाव, उन्नति, उपेक्षा और अनुचित व्यवहार के शिकार होंगे, उस समाज में दुर्बलता, विकृति, विषमता, दुराचरण, पतन और अराजकता की वृद्धि अवश्यंभावी है।

चीनी सन्त कन्फयूशस ने कहा था, '' अज्ञानता एक ऐसी रात्रि के समान है, जिसमें न चांद हैं, न तारे।'' शिक्षा ही मनुष्य को अज्ञानता की अंधेरी रात से निकालकर ज्ञान की रोशनी में खड़ा कर देती है।[1] महात्मा गांधी कहते थे– शिक्षा से मेरा अभिप्राय बच्चे के शरीर मन और आत्मा में विद्यमान सर्वोत्तम गुणों का सर्वांगीण विकास करना है।[2] वस्तुतः Education is a social process directed by the community or by individuals of the community toward the realization of socially accepted values.[3]अर्थात शिक्षा समुदाय या समुदाय के व्यक्तियों द्वारा निर्देशित एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है, जो समाज द्वारा स्वीकृत मूल्यों को प्राप्त करना चाहती है।

इस प्रकार शिक्षा एक ऐसी संस्था है, जिसका उद्देश्य बालक में मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं भौतिक गुणों का विकास करना है, जिससे कि वह अपने सम्पूर्ण पर्यावरण के साथ सरलता से समायोजन कर सके। शिक्षा के उपरोक्त मानक प्राचीन शिक्षा पद्धति के स्वरूप में स्पष्ट रूपसे दिखाई पड़ते हैं। प्राचीन शिक्षा पद्धति में शिक्षा का संस्कृति से घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। उस समय शिक्षा का तात्पर्य पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने से ही नहीं था, वरन समाज एवं संस्कृति से अनुकूलन स्थापित करने से था। शिक्षा प्राप्ति में विशिष्ट शिक्षण संस्थायेंही कारक नहीं थी, अपितु

परिवार, पड़ोस, नातेदारी एवं अन्य अनौपचारिक साधनों द्वारा भी व्यक्ति को शिक्षा प्रदान की जाती थी। मौखिक निर्देशों, दन्त कथाओं, लोकगीतों, संगीत एवं आपसी वार्तालाप द्वारा भी बच्चे को शिक्षित किया जाता था। प्राचीन शिक्षा पद्धति में काम द्वारा (Learning by doing) भी बालक को शिक्षा प्रदान की जाती थी। बच्चे बड़ों का अनुकरण करके कई बातें सीख लेते थे। बुजुर्ग लोग भी सुझाव, आलोचना हंसी मजाक, दण्ड आदि के द्वारा बच्चों को शिक्षा देते थे। प्राचीन शिक्षा पद्धति में धर्म और नैतिकता के तत्वों की प्रधानता पाई जाती है। प्राचीन समय में शिक्षा का तात्पर्य व्यक्ति को नैतिक नियमों एवं धार्मिक क्रियाओं का ज्ञान कराना था। क्रान्तिद्रष्टा कवियों की वाणी समाज में स्थापित मान्यताओं, उसमें हुये परिवर्तन एवं परिवर्धन की साक्षी होती हैं कवि का व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व समाज का मार्गदर्शन करता है। समावेशी शिक्षा का जो स्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ ने निर्धारित किया है, उसकी संजीवनी शक्ति साहित्य से प्राप्त की जा सकती है।

वेद हमारी संस्कृति का उत्स हैं। वेदों में ज्ञान है। भौतिक एवं आध्यात्मिक, परा एवं अपरा ज्ञान की दो धारायें हैं। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की गंगोत्री का उद्गम वेदों से है। वेदों ने भारतीय मन और मस्तिष्क का सदियों से सिंचन किया है। वैदिक संस्कृति के आधार भूत वेमूल्य जिन पर समग्र संस्कृति आधारित है, मानव के कल्याण को लक्ष्य कर विद्या के स्वरूप को कहती है,–'' सा विद्या या विमुक्तये।'' अर्थात विद्या वह है जो हमें सब प्रकार के दुःखों से विमुक्त करे। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में भौतिक विकास एवं उन्नति चरम सीमा पर पहुंच रही है। निःसन्देह यह अनिवार्य भी है, किन्तु मानव केवल शरीर ही नही अपितु आत्मा तथा मन आदि उपकरणों से युक्त एक अद्भुत रचना है। जीवन की गाड़ी एक ही पहिये से नहीं चल सकती। मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों साधनों पर निर्भर है। इसे यदि हम विकृत कर देंगे तो समाज की विकृति अवश्यम्भावी है। बच्चे को यदि सही तरीके से शिक्षित करना है तो वैदिक मूल्यों पर अवश्य ध्यान देना होगा। वैदिक मूल्यों द्वारा ही समाज में समावेशी शिक्षा का स्वप्न साकार हो सकता है। शिक्षा का वैदिक आदर्श क्या है? यदि इस बात को हम जान पायेंगे तो बहुत सा वाद विवाद शान्त हो सकता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में ऋषि ने निम्न मन्त्र में शिक्षा के स्वरूप का वर्णन किया है[4]–

'सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधतमस्तु मा विद्विषावहै।।''

विद्या अभ्यास के आरम्भ में गुरू शिष्य दोनों इस मन्त्र के साथ संकल्प लेते हैं– 'नौ' शब्द का अर्थ द्विवचन है– (हम दोनों) अर्थात गुरू और शिष्य को आत्म रक्षा करने में समर्थ बनाये। 'सहनाववतु' में ब्रह्मचर्य समाविष्ट है। क्योंकि ब्रह्मचर्य के बिना शरीर, मन बुद्धि का विकास सम्भव नहीं है। और उनके विकास के बिना आत्मरक्षा और देश की रक्षा कैसे सम्भव है। ''सह नौ भुनक्तु'' भोजन की व्यवस्था गुरू शिष्य मिलकर अपने श्रम से कर ले। भोजन के लिये पराश्रित न हों। ''सहवीर्यकरवावहै'' समाज में वीरता के भाव की स्थापना करने वाले हों। अर्थात् राष्ट्र में कोई नागरिक कायर और दुर्बल न हो। ''तेजनस्विनावधीतमस्तु'' अर्थात् उनका स्वाध्याय उन्हें तेजयुक्त और गौरवशाली बनाये। अध्ययन की तेजस्विता इस बात की ओर संकेत करती है, कि रष्ट्र के बच्चे को ऐसी पुस्तकें पढ़ाई, जायें, जिन्हे पढ़कर बच्चे अपने बड़ों का मान सम्मान करें। क्योंकि अच्छी पुस्तकों के अध्ययन का अभाव विद्यार्थी में अपनी संस्कृति , धर्म और सभ्यता के प्रति हीन भावना पैदा करता है। तथा विद्यार्थी को स्वाभिमान से वंचित कर उनकी जीवन शैली में निराशा का संचार करता है। ''माविद्विषावहै'' अर्थात गुरू और शिष्य परस्पर द्वेष या प्रतिद्वन्दिता के शिकार न हों। गुरू के अन्दर अपने शिष्य के प्रति वही भावना होनी चाहिये जो एक पिता में अपने पुत्र के लिये होती है। प्रत्येक पिता चाहता है कि उसका पुत्र उससे बढ़कर निकले । शास्त्र में इसीलिये कहा गया है–''सर्वस्माज्जयमिच्छेत् पुत्रादिच्छेत् पराजयम्'' अर्थात सबसे जय और पुत्र से पराजय। इसी प्रकार गुरू के मन में भी सदा यही भावना रहनी चाहिये कि मेरा शिष्य विद्यादि गुणों में मुझसे बढ़कर निकले। तभी समाज को योग्यतर नागरिकों की उपलब्धि हो सकती है।

यही शिक्षा का वैदिक आदर्श है। इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर यदि शिक्षा प्रणाली में सुधार किया जाये तो राष्ट्र की एकता के स्वप्न को साकार किया जा सकता है।

शिक्षा का मुख्य तत्व है ज्ञान की प्राप्ति। ताकि प्राप्त ज्ञान के आधार पर मनुष्य अपने जीवन को सभ्यता, संस्कार, शिष्टाचार एवं विद्या से परिमार्जित कर सके। अविद्यादि दोषों से वह मुक्त हो सके। व्यक्ति में धर्म, जितेन्द्रियता एवं मानवीय गुणों की वृद्धि होवे। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री डॉ0 राधाकृष्णन के

अनुसार भारत सहित सारे संसार के कष्टों का कारण यह है कि, शिक्षा का सम्बन्ध नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति से न रहकर केवल मस्तिष्क के विकास से रह गया है। जिस शिक्षा में अन्तरात्मा की अवहेलना है, उसे पूर्ण नहीं माना जा सकता। विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिये जिससे भावी संतान ज्ञानी, सत्यनिष्ठ और विनयी हो। वह देश के लिये, दूसरों के लिये, मानवता के लिये और इन सबके बीच में अपने आपको जीवित रख सके। वैदिक ऋषि नें इसके लिये सूक्ष्म निर्देश दिये हैं, जो सारे संसार की शिक्षा प्रणाली के लिये प्रासंगिक हो सकते हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् के नवम अनुवाक में शिक्षा का आदर्श उद्देश्य प्रतिपादित है[5]–

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च । तपश्च स्वाध्याय प्रवचनेच। दमश्च स्वाध्याय प्रवचने च। शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्नयश्च स्वाध्याय प्रवचने च। अग्होत्रं च स्वाध्याय प्रवचने च। अतिथियश्च स्वाध्याय प्रवचने च। मानुषं स्वाध्याय प्रवचने च। प्रजा च स्वाध्याय प्रवचने च। प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्याय प्रवचने च।

उक्त मन्त्र में सबसे साथ स्वाध्याय प्रवचने लगा हुआ है। जिसका अभिप्राय यह है कि 'ऋत' अर्थात सृष्टि के नियमों को यानि विज्ञान को पढ़ो और पढ़ाओ। स्वाध्याय कहते हैं– स्वयं पढ़ने को और प्रवचन कहते हैं– दूसरों को पढ़ाने को। 'तप– यानि इन्द्रियों को वश में रखते हुये पढ़ो और पढ़ाओ। 'अग्नि' अर्थात भौतिक विज्ञान या इंजीनियरिंग अग्निहोत्र यानि यज्ञ की भावना से अर्थात परोपकार की भावना से पढ़ो और पढ़ाओ। स्वाध्याय से तात्पर्य नये–नये विषयों का अध्ययन कर अपने ज्ञान को बढ़ाना। इसे Counting Education भी कह सकते हैं। इस प्रकार आत्म अध्ययन करते हुये सत्य का पालन तथा प्रवचन करते हुये विद्यार्थी समाज में अपने आदर्शों को सादगी के साथ स्थापित कर सकता है।

रामायण काल में भी समावेशी शिक्षा के सूत्र मिलते है। उस काल में ऐसी मर्यादा थी, कि बड़े राजा का पुत्र हो, उसको भी पढ़ाने के लिये कोई गुरू राजमहल में नहीं जाता था। राजकुमार गुरू के आश्रम में जाकर ही वेद शास्त्र का अध्ययन करता था।राम गुरू वशिष्ठ के घर विद्याध्ययन के लिये जाते हैं।[6] विश्वामित्र के साथ वन में रहकर भ्रमण करते हुये जीवन का पाठ पढ़ते हैं। आजकल तो मास्टर जीपढ़ाने के लिये घर आते हैं। मास्टर घर में पढ़ाने आये, तो बच्चा समझता है कि मेरे पिता ने नौकर रखा है, पढ़ाने के लिये। मास्टर के प्रति कोई श्रद्धा नही होती। राम पढ़ने के लिये गुरू आश्रम में रहते थे। चक्रवर्ती सार्वभौम राजा के पुत्र होने पर भी , सूर्योदय के पहले उठते और प्रातः काल स्नान करके गुरू वन्दना करते थे। गुरूकुल में रहकर तीन बार संध्या करना, वेदाध्ययन करना, सदा भोजन करना, गुरू की सेवा करना आदि सब प्रकार से सदगुणों का संग्रह करते हुये संयम और सात्विकता को विद्यार्थी जीवन में उतारते थे। विद्या के साथ संयम का शिक्षण मिले तोही विद्या सफल होती है। गुरू के संस्कार विद्यार्थियों में आते हैं। आज विद्यार्थी आराम कुर्सी में पड़े–पड़े पुस्तकं पढ़कर ही ज्ञानी हो जाते है। पुस्तकों को पढ़कर प्राप्त किया हुआ ज्ञान जल्दी भूल जाता है। छः आठ महीने कोई न पढ़े तो वह धीरे–धीरे विस्मृत होने लगताहै। ज्ञान पुस्तक में ही रह जाता है, मस्तिष्क में नही आता, और यदि आभी जाय तो ठहरता नहीं। किन्तु सदगुरू की सेवा से, उसके सानिध्य से, आर्शीवाद पूर्वक प्राप्त ज्ञान में स्थिरता आती है।

महाभारत के शान्ति पर्व के अध्याय 243 में विद्यार्थी के लिये निर्देश हैं[7]– ''विद्यार्थी आयु के प्रथम चतुर्थांश में धर्मत्त्व का ज्ञान अर्जन करते हुये गुरू के घर अथवा गुरू पुत्र के पास रहे। गुरू के सो जाने परसोवे औरउनके जागने से पहले उठे। गुरू गृह के सभी कार्य विद्यार्थी करें। काम कर चुकने पर गुरू के पास अध्ययन करे। गुरू के भोजन किये बिना भोजन न करें। शास्त्र प्रतिपादित ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करे। इस रीति से ज्ञानार्जन कर चुकने के बाद यथाशक्ति दक्षिणा देकर गुरू की आज्ञा से समावर्तन करें।''[8]

आदिकाव्य महाभारत के वनपर्व में अष्टावक्र का वृतान्त,[9] उन तमाम अविकसित या क्षीणांग बच्चों के लिये प्रेरण स्त्रोात बन कर उनमें आत्म विश्वास की वृद्धि कर सकता है। अष्टावक्र कहोड़ ऋषि की संतान थे। उनका शरीर आठ जगह से टेढ़ा था, इसीलिये उनका नाम ही अष्टावक्र पड़ गया। किन्तु इसी बालक ने अपने शास्त्रार्थ से बड़े–बड़े ज्ञानियों को परास्त किया था।धन्य है वह गुरू जिसनें अष्टावक्र में इतना आत्मविश्वास भरा था। यही टेढ़ा मेढ़ा बालक सम्राट जनक का गुरू हुआ। जनक को दिया गया ज्ञानोपदेश ही अष्टावक्र की गीता के रूप में हमें प्राप्त है।

बौद्ध साहित्य समावेशी शिखा का अनमोल कोश है। बुद्ध मानवीय प्रतिभा एवं मानवीय चरित्र के उत्कर्ष बिन्दु है।। उसका कारण है किआज से 2500 वर्ष पूर्व बुद्ध के समक्ष भी जातिवाद, वर्ण, वर्ग, धर्म की दीवार जैसी समस्यायें थी। जिनके विरोध में बुद्ध ने वैचारिक आन्दोलन किया तथा समतलामूलक आदर्श समाज की स्थापना की। इतिहास में प्रथम बार बुद्ध ने एक नवीन सांस्कृतिक मूल्य स्थापित किया, जिसका केन्द्र बिन्दु था, मनुष्य और उसकी स्वतन्त्रता। बुद्ध ने अपने जीवन काल में मनुष्य की रूचि एवं क्षमता के अनुरूप अनन्त देश्नायें दी। जोकि अत्यन्त सरल सुबोध एवं सर्वजन ग्राहय है। धम्मपद के यमक वग्गौ मे हम अन्धे चक्खुपाल को भी पूर्ण अर्हत होता हुआ पाते हैं।[10] बौद्ध शिक्षा का केन्द्र बिन्दु मन है। व्यक्ति की समस्त शारीरिक, वाचिक तथा चैतसिक क्रियायें सर्वप्रथम मन में ही उत्पन्न होती हैं। मन समस्त भलाईयों बुराईयों का स्त्रोत है। अतः मन सदैव जाग्रत रखना चाहिये। हमारी मानसिक सोच ही हमारे कर्मो की प्रेरक है। प्रत्येक कार्य का प्रारूप सर्वप्रथम हमारे मन मस्तिष्क में ही होता है। बुद्ध ने प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में अपनी पसंद का रंग भरने के लिये कूची उसके हाथमें पकड़ाई हैं। 'अप्पदीपो भव' यह बौद्ध साहित्य की पहली शिक्षा है। व्यक्ति स्वयं ही अपना मालिक है। प्रत्येक मनुष्य अपने कर्म से स्वयं का निर्माण कर सकता है जीवन को आकार दे सकता है। बुद्ध की विशेषता है कि वे मनुष्य को रंग चुनने की स्वतन्त्रता देते हैं, किसी विशिष्ट रंग में रंगने का आग्रह नहीं करते। बुद्ध व्यक्ति को पूरी करूणा के साथ राग द्वेष से परे होकर सत्कर्मों को करते हुये पथ को प्रशस्त करने की शिक्षा देते है।

निष्कर्ष :–

इस प्रकार साहित्य की इन धरोहरों सेअगर हम अपने आपको संवार सके तो निश्चित ही सम्पूर्ण राष्ट्र शिक्षित एवं स्वावलम्बी होकर स्वाभिमान से समतामूलक समाज का निर्माण कर सकता है।

शिक्षा मानव जीवन में एक सतत प्रक्रिया है। मनुष्य जीवन भर कुछ न कुछ सीखता रहता है। इसलिये सच्चे अर्थों में मनुष्य वही है, जो जीवन भर विद्यार्थी रहता है। क्योंकि ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। वहअथाह और अगाध है 'अनन्त शास्त्रं बहुलाश्च विद्याः। शिक्षा ही विद्यार्थी को तपस्वी बनाती है। तभी वह ऊँच नीच, अमीरी गीरबी के भेद को मिटा कर, भाषावाद, प्रान्तवाद, जातिवाद की खाई को मिटा सकता है। साहित्य में बिखरे हुये समरसता के सूत्र निश्चय ही सरलता, समानता, सामीप्यता आदि गुणों के समुचित विकास के साथ समाज का सर्वांगीण विकास कर सकते हैं। तभी ''सर्वे भवन्तु सुखिनः'' और ''वसुधैवकुटुम्बकम्'' की भावना चरितार्थ होगी।

सन्दर्भ सूची :–

1. एम.एल. गुप्ता, सामाजिक नियन्त्रण तथा परिवर्तन, पेज–140
2. एम.एल. गुप्ता, सामाजिक नियन्त्रण तथा परिवर्तन, पेज–141
3. Samuel L. Eby. An Introduction to western eirilization Page.159
4. तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानन्द बल्ली, शन्तिपाठ
5. तैत्तिरीयोपनिषद् नवम अनुवाक
6. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड सर्ग–18
7. महाभारत शान्तिपर्व, अध्याय 243
8. महाभारत मीमांसा, शिक्षा पद्धति पृ0 207–213
9. महाभारत वनपर्व अध्याय 133/11–20
10. धम्मपद, यमनवग्गो/1